शिक्षा के प्रांगण : कक्षा से कैंटीन कल्चर तक

प्रेम सिंह

नवउदारवादी नीतियों (नियो-लिबरल पॉलिसीज) ने शिक्षा के चरित्र और उद्देश्य को बदलते हुए उसका व्यावसायीकरण (कॉमर्सियलाईजेशन) ही नहीं किया है, शिक्षा संस्थानों - स्कूलों-कालेजों-विश्वविद्यालयों - के वातावरण को भी उस दिशा में तेजी से बदला है. इसकी एक बानगी स्कूलों-कालेजों-विश्वविद्यालयों में कैंटीन कल्चर के फैलाव में देखी जा सकती है. इस संदर्भ में पिछले सौ सालों से देश की राजधानी में स्थित दिल्ली विश्वविद्यालय का उदहारण लें. शिक्षा जगत में नवउदारवाद के पैर पसारने से पहले कैंटीन यहां के कालेजों और विश्वविद्यालय का एक बहुत छोटा हिस्सा होती थीं. उनमें खाने-पीने की चीजें बहुत कम - चाय, ब्रेड पकोड़ा, ऑमलेट, समोसा, सेंडविच आदि - मिलती थीं. विद्यार्थियों के लिए, अगर वे कॉलेज परिसर में हैं, सबसे पहले कक्षा और उसके बाद पुस्तकालय, कॉमन रूम, स्पोर्ट्स रूम, एनसीसी रूम, एनएसएस रूम, यूनियन रूम, अगर किसी कॉलेज में सुविधा है तो थिएटर रूम और खेल के मैदान में जाना महत्वपूर्ण होता था. कॉलेज में बने दोस्तों के साथ कॉलेज लॉन से लेकर सीढ़ियों तक पर बैठने की रवायत थी, कैंटीन में नहीं.

विद्यार्थी जिस जगह बैठते, उसी तरह की आपस में चर्चा होती थी. एक-दूसरे के विषयों, अनुभवों, रुचियों आदि को जानने में उनका समय बीतता था. इस तरह देश के अलग-अलग हिस्सों और दिल्ली शहर एवं देहात से आने वाले विद्यार्थियों के बीच आपस में अलगाव नहीं, साझापन बढ़ता था. कैंटीन की तरफ बहुत कम विद्यार्थी जाते थे, वह भी किसी ख़ास अवसर पर. बात-बात पर पार्टी लेने-देने का रिवाज़ तब नहीं था. सत्तर के दशक की मुझे याद है. तब विद्यार्थियों पर बर्थडे मनाने का भूत सवार नहीं हुआ था.

उन दिनों यू-स्पेशल बसें चलती थीं. कक्षाएं ख़त्म होने के बाद विद्यार्थियों को यू-स्पेशल पकड़ कर घर जाने की जल्दी रहती थी. यू-स्पेशल बसें विद्यार्थियों के एक-दूसरे के करीब आने का एक बड़ा जरिया हुआ करता था. इन बसों में प्रेम-प्रसंग भी चलते थे, झगड़े और मार-पीट भी. इन बसों के जरिये कॉलेज-विश्वविद्यालय की दुनिया पूरे शहर और देहात तक प्रसारित हो जाती थी. सांध्यकालीन कालेजों की यू-स्पेशल बसें भी चलती थीं. प्राय: सभी यू-स्पेशल बसों में कोई न कोई शिक्षक भी अपने गंतव्य तक यात्रा करते थे. नवउदारवाद की अगवानी में यू-स्पेशल बसें बंद होती चली गईं. एनसीसी/एनएसएस आदि निष्क्रिय या ख़त्म होते चले गए. विद्यार्थियों के बीच सामूहिकता की भावना पैदा करने वाला वह वातावरण भी समाप्त होता चला गया. बढ़ती चली गईं कैंटीन और उनके मैन्यु!

स्कूलों-कालेजों-विश्वविद्यालयों में पिछले 20-25 सालों में एक नए वातावरण का निर्माण हुआ है. अब कालेजों में जाइए तो पायेंगे कि कैंटीन कक्षा के बाद या कक्षा के साथ विद्यार्थियों के खाने-पीने और जमावड़े का सबसे अहम स्थल बन गई हैं. पहले पीरियड से ही यह सिलसिला शुरू हो जाता है. बाज़ार के बड़े ईटिंग पॉइंट्स की तरह कैंटीनों का लम्बा-चौड़ा मैन्यु होता है. दिल्ली विश्वविद्यालय में स्थानीय के अलावा पूरे देश से विद्यार्थी पढ़ने आते हैं. उनकी संख्या के हिसाब से हॉस्टल की सुविधा न के बराबर है. ज्यादातर विद्यार्थी अपना इंतजाम करके रहते हैं, जो काफी महंगा पड़ता है. लेकिन उसके बावजूद कॉलेज कैंटीन स्थानीय और बाहर से आए विद्यार्थियों से भरी रहती हैं. कैंटीन कल्चर का यह फैलाव बताता है कि पिछले दो-तीन दशक में मध्यवर्ग, जिसमें सर्विस क्लास भी शामिल है, के पास काफी धन आया है. अगर विद्यार्थियों की खरीद-शक्ति नहीं होती, तो दिल्ली विश्वविद्यालय में कैंटीन-व्यापार इस तरह नहीं जम सकता था. कैंटीन का ठेका लेने वाले ठेकेदारों को काफी मुनाफा होता है. इसीलिए कैंटीन का टेंडर लेने के लिए काफी प्रतिस्पर्धा और सिफारिश चलती है.

गौर करें कि कैंटीन कल्चर के समानांतर हर कॉलेज में फोटो-कॉपी कल्चर भी विकसित हुआ है. अध्ययन सामग्री फोटो-कॉपी कराने के कॉलेजों एवं विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर अनेक फोटो-कॉपी पॉइंट्स खुले हुए हैं. उनकी भी अच्छी-खासी कमाई होती है. पहले सभी विद्यार्थी पुस्तकालय या घर पर बैठ कर परीक्षा के नोट्स तैयार करते थे. अब वैसा नहीं है. सब कुछ फोटो-कॉपी कराया जाता है. फोटो-कॉपी कल्चर के चलते कॉलेज में कक्षा के अलावा जो समय बचता है, विद्यार्थी उसमें से ज्यादा समय कैंटीन में बिताते हैं. इस तरह फोटो-कॉपी कल्चर कैंटीन कल्चर का विस्तार है. नवउदारवाद के साथ शुरू हुई यह प्रवृत्ति भी कैंटीन कल्चर का ही विस्तार है कि हर साल बड़े छात्र संगठन कालेजों के विद्यार्थियों को शहर और उसके बाहर स्थित रिसॉर्ट्स में पार्टी कराने के लिए गाड़ियों में बैठा कर लेकर जाते हैं.

दिल्ली विश्वविद्यालय के दो कैंपस हैं. वहां भी कैंटीन कल्चर का असर बखूबी देखा जा सकता है. एक समय नार्थ कैंपस में तीन-चार कॉफ़ी हाउस होते थे, जिनमें लॉ फैकल्टी का कॉफ़ी हाउस बैठने की ख़ास जगह था. वहां कॉफ़ी-चाय के साथ सेंडविच और डोसा-बड़ा मिलते थे. छात्र-शिक्षक राजनीति से लेकर साहित्यिक-सांस्कृतिक-बौद्धिक गतिविधियों में हिस्सा लेने वाले स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थी, शोधार्थी और शिक्षक वहां जमा होते थे. कक्षाएं समाप्त होने बाद लोग देर तक तसल्ली से बैठते थे. शाम के वक्त कॉफ़ी हाउस में होस्टलों में रहने वाले विद्यार्थियों का जमावड़ा होता था. इस तरह बिलकुल साधारण और सस्ता लॉ फैकल्टी का कॉफ़ी हाउस आपस में मिलने-जुलने और चर्चा करने का जीवंत केंद्र था. दिल्ली शहर के कॉफ़ी हाउस भी इसी खासियत के लिए जाने जाते थे.

नार्थ कैंपस में करीब 20 साल पहले ही कॉफ़ी हाउस ख़त्म कर दिए गए थे. उन दिनों 'निरूला' का बहुत जोर था. अभी जहां दिल्ली विश्वविद्यालय कर्मचारी संघ की को-ऑपरेटिव कैंटीन है, वहां कॉफ़ी हाउस हुआ करता था. वह जगह निरूला रेस्टोरेंट को दे दी गई थी. विश्वविद्यालय समुदाय की तरफ से विरोध भी हुआ था. लेकिन निरूला रेस्टोरेंट को हटाया नहीं गया. मोटा मुनाफा नहीं कमा पाने के चलते कुछ वर्ष बाद वह खुद ही जगह खाली करके चला गया. केंद्रीय पुस्तकालय के साथ एक नई इमारत दिल्ली विश्वविद्यालय सांस्कृतिक परिसर के नाम से बनाई गई थी. उस परिसर में एक बड़ी कैंटीन भी खोली गई. कई ठेकेदार/संस्थाएं अब तक यह कैंटीन चलाते रहे हैं. इसी इमारत में पुस्तकों/पत्रिकाओं की बिक्री का एक केंद्र खोला गया था. विद्यार्थी और शिक्षक वहां से अपनी पसंद की पुस्तकें-पत्रिकाएं लेते थे. पुस्तक केंद्र चलाने वाले व्यक्ति को बताने पर वह जरूरी पुस्तक/पत्रिका मंगवा देता था. उसी इमारत में एक छोटा सेमिनार रूम भी बनाया गया था, जिसे विद्यार्थी और शिक्षक कार्यक्रम के लिए मुफ्त बुक करा सकते थे. उस इमारत में पुस्तक केंद्र और सेमीनार रूम की सुविधाएं काफी पहले बंद कर दी गईं थीं. फिलहाल कैंटीन भी बंद रहती है. शायद अगले ठेकेदार के इंतजार में!

साउथ कैंपस की नई इमारत बनी तो वहां की कैंटीन मशहूर हो गयी. वह कैंटीन एक छोटी-सी साधारण इमारत में चलती थी. कैंटीन मूर्ति नाम के दक्षिण भारतीय व्यक्ति चलाते थे. वह कैंटीन मूर्ति की कैंटीन के नाम से ही जानी जाने लगी थी. मूर्ति की खासियत यह थी कि वह मुफ्तखोरी करने वाले विद्यार्थियों या दिल्ली देहात से आकर वहां अड्डा ज़माने वाले कुछ दबंगों को भी नाराज या निराश नहीं करता था. वह सबको साथ लेकर चलता था, और सबको सस्ते में चाय, कॉफ़ी, नाश्ता और लंच उपलब्ध कराता था. जैसे-जैसे देश में नवउदारवाद का नशा तेज होने लगा, खाने की गुणवत्ता और किफायती दाम के लिहाज से बेजोड़ वह कैंटीन ख़त्म कर दी गई. करीब एक करोड़ रूपया खर्च करके कैंटीन के लिए बांस की एक डिजाइनर इमारत का निर्माण कराया गया. उससे भी तसल्ली नहीं हुई तो कई करोड़ रूपया खर्च करके वर्तमान वातानुकूलित कैफेटेरिया बनवाया गया. ज़ाहिर है, इस कैंटीन में खाने-पीने की चीजों की गुणवत्ता घट गई, और दाम बढ़ गए हैं. फिर भी कैंटीन काफी चलती है.

दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेजों और दोनों कैंपस के कैंटीन कल्चर का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि आर्थिक रूप से कमजोर विद्यार्थी कैंटीन में संपन्न विद्यार्थियों की तरह नहीं जा पाते हैं. जब कक्षा के बाद या कक्षा छोड़ करके समूह में विद्यार्थी कैंटीन की तरफ जाते हैं, तो ऐसे विद्यार्थियों को छिटकना पड़ता है. नार्थ कैंपस फैला हुआ है. वहां यह विभाजन साफ़ नहीं दिखाई देता है. लेकिन विश्वविद्यालय के कॉलेज और साउथ कैंपस बंधे हुए हैं. वहां आर्थिक रूप

से मजबूत और कमजोर विद्यार्थियों के बीच की फांक साफ़ दिखाई देती है. कैंटीन कल्चर में अलगाव-ग्रस्त विद्यार्थी कैसा अनुभव करते हैं, और अपने अलगाव को भरने के लिए क्या उपाय करते हैं - इसका अध्ययन दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले या पढ़ चुके पत्रकारिता के विद्यार्थियों को करना चाहिए.

शिक्षण संस्थानों में फैला कैंटीन कल्चर व्यापक बाज़ारवाद का ऐसा कॉरिडोर है, जहां से गुजर कर वह (बाजारवाद) अपनी निर्विघ्न यात्रा तय करता है.

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फेलो हैं*)